ISSN: 2456–5474 RNI No.UPBIL/2016/68367 Vol-2* Issue-7* August- 2017
Innovation The Research Concept

श्री रामकृष्ण परमहंस एवं उनकी भक्ति योग साधना

रीना मिश्रा
व्याख्याता,
योग विभाग,
रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय,
जबलपुर, म.प्र.

सारांश

धर्मभूमि भारत का आध्यात्मिक इतिहास इस बात का प्रमाण है कि जब–जब भारत के आध्यात्मिक जीवन पर जड़वादी संकट आया तब–तब भगवान ने नर देह में अवतीर्ण हो उसे दूर किया। पूर्व युगों की अपेक्षा वर्तमान युग का संकट अधिक भयंकर था, क्योंकि वह केवल साधारण भोगवाद नहीं था, यह तो वैज्ञानिक जड़वाद था, जो अति द्रुतगति से असंख्य नर, नारियों के अन्तःस्थल में पैठता हुआ उनके हृदय के श्रद्धा–विश्वास को समूह नष्ट करने पर तुला था। इसके आकर्षक मोहजाल में फॅसकर भारतवासी त्याग पर अधीष्ठित अपने सनातन धर्म से दूर चले जा रहे थे। मानव जाति को इस महान संकट से बचाने के लिए सनातन धर्म की पुनः प्रतिष्ठा आवश्यक थी। किन्तु यह प्रतिष्ठा इस रूप में करनी थी जिससे वैज्ञानिक मनोभाव युक्त आधुनिक मानव उसकी प्रक्रिया को सरलता से समझ सके, निदान इस कार्य की पूर्ति के लिए भगवान श्रीरामकृष्ण देव का आर्विभाव हुआ था। उन्होंने अपने दिव्य जीवन द्वारा भारत की सुषुप्त आध्यात्मिक शक्ति को पुनः जागृत किया। उन्होंने स्वयं ही संकेत कर दिया था, कि पूर्व में जो श्रीराम हुए हैं और जो कृष्ण हुए हैं वहीं वर्तमान में श्रीरामकृष्ण हैं। न केवल हिन्दू धर्म को वरन् विश्व के विख्यात सभी धर्मों को पुनर्जीवित कर उन्होंने संपूर्ण संसार की धर्मग्लानि को दूर किया तथा भ्रान्त, अशान्त, अतृप्त जगद्वासियों को अमृतत्व (तत्त्व) का संधान देकर धन्य किया। भगवान श्रीरामकृष्ण सभी धर्मों के जीवन्त विग्रह थे, सनातन सत्य की अभिनव अभिव्यक्ति थे। वे अत्यंत सरल एवं मनोहर भाषा में उपदेश देते थे तथा उसमें उनकी गहन–गंभीर आध्यात्मिक अनुभूति की शक्ति भरी होती थी। इसलिए श्रोता एवं अध्येता के मन पर उसका विलक्षण प्रभाव पड़ता था। उनके उपदेशों को सुनते हुए श्रोता के मन में तत्काल सारा संशय, द्वन्द्व, अविश्वास दूर हो जाता और उसके हृदय में श्रद्धा का संचार होता। यह सब ठीक उसी प्रकार होता था जैसा कि श्रीमद्भागवत् पुराण में बताया गया है कि श्रद्धायुक्त श्रोता के हृदय में भगवान तत्काल स्वयं विराजमान हो जाते हैं एवं अपना दैवत्व प्रदान कर देते हैं:–

''ईश्वरःसद्यो हृदयवरूध्यतेऽत्र कृतिभिः सुश्रूभिः तत्क्षणात् ।''[1]

मुख्य शब्द : आध्यात्मिक, जड़वाद, हिन्दू धर्म, अमृतत्व, सनातन धर्म ।

प्रस्तावना

प्रस्तुत शोध लेख में श्रीरामकृष्णदेव के जीवन की उपलब्धियों एवं उसके प्रभाव की चर्चा, धर्मशास्त्रों की कसौटी पर की गई है। वे पूर्णतया भक्तियोगी थे। अपने जीवन में उन्होंने प्रत्यक्षानुभूतिपूर्वक जो भी सिद्ध किया है, उसका मर्म हमें वैदिक शास्त्रों में सुपुष्ट होता हुआ प्राप्त होता है। आचार्य मंगल देव शास्त्री ने भारतीय संस्कृति के विकास नामक ग्रन्थ में ''निगम'' शब्द का अभिप्राय– ''निश्चित या व्यवस्थित वैदिक परम्परा से माना है, जबकि ''आगम'' का मौलिक अभिप्राय प्राचीनतम प्राग्वैदिक काल से आती हुई वैदिकेतर धार्मिक या सांस्कृतिक परम्परा को माना है ।''[2]

श्रीरामकृष्ण परमहंस के भक्तियोग की कोई एक निश्चित प्रविधि नहीं है एवं उस प्रविधि का विस्तार या उल्लेख भी हमें कहीं विशेष रूप से प्राप्त नहीं होता है। किन्तु यदि श्रीरामकृष्ण जी के जीवन दर्शन एवं उनके सिद्धान्तों पर विहंगम दृष्टि डाली जाये तथा आत्मचिंतन किया जाए तो यह स्पष्ट होता है कि श्रीरामकृष्ण परमहंस की भक्तिसाधना का मूल हमें ''आगम'' एवं ''निगम'' परम्पराओं से प्राप्त होता है। स्वयं गोस्वामी तुलसीदास जी ने श्री रामचरितमानस में अपने भक्ति सम्बन्धी सिद्धान्तों का आधार– ''नानापुराणनिगमागमसम्मत''[3] बताया है। इससे यह अनुगूँज स्पष्ट अनुभव की जा सकती है कि नारद भक्तिसूत्र के माध्यम से विकसित वैदिक कालीन भक्ति परम्परा कालान्तर में किस प्रकार''निगमागम'' के रूप में संश्लिष्ट हुई और श्रीरामकृष्ण परमहंस जैसे उच्चकोटि के अवतारी योगियों एवं संतों के जीवन में

उसका प्रभाव दृष्टिगोचर हुआ है। इसी तथ्य को और अधिक स्पष्ट करने हेतु श्रीरामकृष्ण परमहंस की भक्तियोग साधना पर दृष्टि डालना प्रासंगिक होगा।

अध्ययन का उद्देश्य

कालवश नष्ट हो रहे सनातन धर्म का सार्वकालिक, सार्वलौकिक एवं सार्वदेशिक स्वरूप अपने जीवन में निहित करके, संसार के समक्ष भक्ति योग की महिमा को रामकृष्ण धर्म तथा संघ के ज्वलन्त उदाहरण द्वारा प्रस्तुत करना ही इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य है।

पृष्ठभूमि

श्रीरामकृष्ण देव का उदय एक धार्मिक एवं अति आध्यात्मिक परिवेश में हुआ था। पिता खुदीराम चटटोपाध्याय कर्मकाण्डी पंडित एवं माता चन्द्रमणी देवी धार्मिक महिला थीं। बड़े भाई रामकुमार भी विद्वान पंडित थे। गृह ग्राम कामारपुकुर (बंगाल प्रदेश) के उनके कुल देवता रघुवीर की इस परिवार पर विशेष कृपा रहती थी। पं. खुदीराम भी इतने श्रद्धालु थे कि पैदल ही सेतुबंध रामेश्वरम् दर्शन करने गये, वहॉ से वाण शिवलिंग लाकर कुल देवता रघुवीर और शीतला देवी के पास ही उनकी स्थापना कर पूजा करते थे। पुत्री कात्यायनी को जब प्रेत बाधा हुई तब उसके निवारणार्थ पिण्डदान करने गया जी गये और भगवान गदाधर–विष्णु को प्रसन्न किया। भगवान विष्णु ने पुत्र रूप में जन्म लेने का आर्शीवाद दिया। ठीक इसी समय यहॉ कामारपुकुर में चन्द्रमणि देवी को एक चमत्कार का आभार हुआ कि कोई अप्रतिम तेजपुंज उनके उदर में प्रवेश कर गया। इस इन घटनाओं के बाद ही 17 फरवरी 1836 को उनके यहॉ विष्णु रूप पुत्र का जन्म हुआ जिसका नामकरण भगवान के गदाधर रूप पर विश्वास के कारण गदाधर रखा गया। बाद में अन्नप्राशन के समय बाल का नाम सोच–विचार कर रामकृष्ण रखा गया। इस प्रकार बालक गदाधर (रामकृष्ण) का जन्म् चमत्कारिक एवं अद्भुत था।

अल्पकाल विद्या सब पाई

पॉच वर्ष की अवस्था में बालक गदाधर (गदाई) को विद्यालय भेजा गया। थोड़े ही दिनों में उन्होंने काम भर के लिए पढ़–लिख लिया । इस दौरान नित्य नई रचनात्मकता, अनुकरणशीलता देवी–देवताओं के चित्र बनाने, मूर्तियॉ गढ़ने जैसे कामों में इस बालक ने विशेष प्रतिभा का परिचय दिया। उनका यह जन्मजात संस्कार विलक्षण था। बालक गदाधर महान श्रुतिधर एवं स्मृतिधर थे। एक बार जो भी देख, सुन लेते थे उसमें सिद्धहस्त हो जाते। संगीत, अभिनय की कला में भी प्रवीण थे एवं बड़े मधुर भजन गाते थे। संवाद, नाटक में भी निपुण थे। उनका सहज, निर्भीक, निष्कपट स्वभाव था एवं वे अत्यंत देवभक्त, आस्थावान थे। देवी–देवताओं, महापुरूषों के चरित्रों को पढ़, सुन लेने के पश्चात् उस पर गंभीर चिन्तन करते रहते थे। यह सभी विशेषताऍ स्वतः स्फूर्त थी।

प्रथम ईवरानुभूति

लगभग छः वर्ष की आयु रही होगी जब उन्हें एकान्त में टहलते और चिन्तन करते समय, आकाश में उज्जवल बगुलों की पंक्ति दिखी। मेघाच्छन्न आकाश में उड़ते हुए बगुलों की शोभा देखकर वे भावस्थ हो समाधि मग्न हो गये। उनकी यह प्रथम ईश्वरानुभूति की आनन्दमयी अवस्था थी। इस घटना के एक वर्ष बाद ही पिता का अवसान हो जाने पर उन्हें भगवान बुद्ध की तरह संसार की अनित्यता का बोध हो गया। पाठशाला जाना बंद हो गया। बालक के जीवन में जो संगीत, नृत्य, अभिनय, विनोद और रंगरस प्रियता थी, उसका स्थान गंभीर भाव–तन्मयता ने ले लिया अब उनका समय भूतिरखाल (शमशान) या माणिक राजा की अमराई में गहन चिन्तन करते हुए बीतने लगा। इसी समय एक घटना और घटी। गांव से थोड़ी ही दूर आनुड़ग्राम में विशालाक्षी देवी का मंदिर है जहां गांव की महिलाऍ दर्शन पूजन के लिये जा रही थी, ''गदाई'' भी गाना गाते हुए, उन्हीं के साथ हो लिये। वहॉ कीर्तन–भजन में इतना भाव तन्मय हुआ कि देवी ने प्रसन्न होकर उनके हृदय में दर्शन देकर कृत–कृत्य कर दिया। बस क्या था? गदाधर एकदम भावस्थ होकर देवी के स्वरूप में निमग्न हो सुध–बुध खो बैठे। आज उन्हें अनायास इष्ट का साक्षात्कार हो गया। फिर कभी भी उनका चित्त अपने उस इष्ट से विलग नहीं हुआ।

उच्च मनोभूमि

कामारपुकुर या आस–पास जहॉ कहीं भी पूजा–पाठ, कथा– कीर्तन, पुराण–प्रवचन आदि होता, श्रीरामकृष्ण वहॉ अवश्य ही जाते। सब सुन समझकर उन्होंने धर्म, वेद–शास्त्र और पुराणों का मर्म समझ लिया था। इस तरह ज्ञानार्जन करते हुए उन्होंने सभी शास्त्रों–दर्शनों का सार समझ लिया। औपचारिक शिक्षा ग्रहण करने में उनकी रूचि नहीं थी। ईश्वर परायणता, इष्ट निष्ठा एवं देवी–देवताओं की पूजा, आराधना ने उनके हृदय को उच्च मनोभूमि पर स्थापित कर दिया था।

श्रीरामकृष्ण जी वास्तविक ज्ञान चाहते थे। शुष्क पांडित्य के पक्षपाती नहीं थे । श्रीरामचरित मानस में गोस्वामी तुलसीदास जी ने इन पंक्तियों के संदर्भ में और भी स्पष्ट करते हुए कहा है कि–

''आगम निगम पुरान अनेका ।
पढ़े लिखे कर प्रभु फल एका ।
तव पद पंकज प्रीति निरंतर।
सब साधन कर यह फल सुन्दरा ।।''[4]

वस्तुतः ज्ञान का उच्चतम् स्तर यही तो है ।

मातृ भाव की उपासना

आध्यात्मिक चिन्तन के साथ श्रीरामकृष्ण जी की व्याकुलता बढ़ती जा रही थी। भांति–भांति से वे मॉ को सजाते, विधि उपचारों से पूजा करते, स्पर्श करते और अपूर्व आनन्द में मग्न रहते । उनका भावावेश, दिव्य और अलौकिक व्यवहार मॉ के प्रति दृढ़ अनुराग, मंदिर के अन्य सेवकों के लिए ही नहीं दर्शनार्थियों के लिए भी कौतूहल का विषय बन रहा था। अब उनकी अन्तःदृष्टि में काली माता प्रकृति में व्याप्त अक्षय आधार का प्रतीक है। अब उनका सारा समय जगत्माता के चिन्तन में ही बीतता। वे अपनी भाव तन्मयता में खो जाते, सुध–बुध भूल जाते, मंदिर का पट बन्द हो जाने के बाद भी रात–रात जगाते रहते थे। वे निरंतर भाव–समुद्र के गोते लगाते रहते थे। उनकी व्याकुलता इतनी बढ़ चुकी थी, कि वे कभी–कभी रोते हुए पछाड़ खाकर गिर पड़ते, लहुलुहान हो जाते थे।

रो–रो कर कहते– ''मॉ एक दिन और बीत गया तेरे दर्शन नहीं हुए, एक–एक दिन आयु बीतती जा रही है, मॉ तुझे दया नहीं आती तूने दर्शन नहीं दिए।''[5] ऐसा क्रम निरंतर चलता रहा। एक दिन अश्रुपूर्ण नैनों से मॉ के भजन गाते–गाते उनके मन में ग्लानि हुई– अगर मॉ के दर्शन न मिले तो इस शरीर को धारण करने का क्या लाभ ? बस ऐसा विचार आते ही उन्होंने मंदिर की दीवार पर लटकती हुई तलवार खींच ली और उसी से अपनी जीवन लीला समाप्त करने ही वाले थे, कि सहसा माता की ज्योर्तिमयी रूप के दर्शन मिल गये, वे मूर्छित होकर गिर पड़े– उसी क्षण से आगे क्या हुआ उन्हें ज्ञात न रहा। अब मॉ काली का साक्षात्कार कर वे सिद्ध हो चुके थे। जब उनकी बाह्य चेतना जागृत हुई– मॉ–मॉ कहकर कातर स्वर में पुकारते रहे। सारा शरीर खो गया था– केवल एक चैतन्य आनन्द में वे गोते लगाने लगे।

ईश्वरीय महाभाव में जब भक्त पहुॅचता है तब उसकी स्थिति ऐसी ही हो जाती है, श्रीरामचरितमानस के अरण्य काण्ड में सुतीक्षण मुनि कि भाव विहवलता का चित्रण गोस्वामी तुलसीदास जी ने ऐसा ही किया है–

''दिसि अरू विदिस पंथ नहि सूझा ।
कौ मैं चलेउ कहां नहिं बूझा ।
क्वहुंक फिर पाछेपुन जाई ।
कवहुंक नृत्य करई मन लाई ।।
अविरल प्रेम भगति मुनि पाई ।
प्रभु देखहि तरू ओट लुकाई ।
अतिसय प्रेम देखि रघुवीरा ।
प्रगटे हृदय हरन भवभीरा ।।''[6]

मातृ भाव में सिद्धावस्था प्राप्ति के पश्चात् अब वैधी पूजा करना उनके लिए असंभव हो चुका था। चूॅकि पं. श्रीरामकुमार जी का अवसान हो चुका था, अतएव उनके भान्जे हृदयाराम ने पूजा–पाठ, संध्या–वन्दन का कार्य सम्हाल लिया। श्रीरामकृष्ण जी अब निरंतर माता के भाव में ही डूबे रहते। पर जब कभी वे अन्तर्दशा से वाह्य दशा में आते, माता के भाव–विलास का प्रत्यक्ष अनुभव करने के लिए स्वयं पूजा करते, नैवेद्य चढ़ाते और कहते– ''मॉ मुझे भी खाने के लिए कहती हैं, अच्छा; खाता हूॅ, ले तू भी खा नैवेध देवी के मुॅह में देते, मॉ–मॉ कहकर रोते, पछाड़ खा गिर पड़ते।''[7] अब श्रीरामकृष्ण जी के जीवन में ''सतत् बौद्ध रूप, केवलानंद रूपम्'' की स्थिति आ गई। उन्हें मॉ सदा घेरे रहती–

''जिमिबालक राखे महतारी ।
करउं सदा तिनकी रखवारी ।।''[8]

वे मतवाले के समान गाने लगते– जिसकी मॉ आनन्दमयी है, वह क्या कभी दुःखी रह सकता है। ''हे ! सदानंद निमग्न रहने वाली, सदा शिव के चित्त में बसने वाली मॉ तारा ! तुझसे मेरी इतनी प्रार्थना है, कि ऐसा करना जिससे मेरा मन तेरे चरणों में ही बसा रहे ।''[9] वस्तुतः यह प्रेमा भक्ति थी, उच्चतम अवस्था है– जिसमें भक्त एक क्षण के लिए भी प्रभु से दूर नहीं होना चाहताः–

''जेहिं गुन तें वस होहु रीझ कर
सो सब मोहिं विसरो ।
तुलसीदास निज भवन द्वार
प्रभु दीजै रहन परयो ।।[10]

अब श्रीरामकृष्ण जी अपनी इष्ट माता काली पर पूर्णतया, सर्वभावेन शरणागत हो चुके थे और शरणागति का अविच्छिन्न सुख लेने लगे थे– यह आनन्द की पराकाष्ठा कही जाती है ।

दास्य भाव की साधना

जगत्माता के विविध भावों में श्रीरामकृष्ण जी निरंतर चार वर्ष रहे और वे माता में प्रतिष्ठित हो चुके थे। अब उनकी भक्ति साधना की गति तीव्र वेगवती नदी के समान अनन्त भाव समुद्र की ओर निरंतर प्रवाहित होती जा रही थी। अब उन्होंने दास्य भाव की साधना प्रारंभ किया। श्रीराम प्रभु के दर्शनार्थ उन्होंने अपने में हनुमान जी का भाव आरोपित किया जिस साधना से श्रीराम और सीता देवी की चरम अनुभूति उन्हें होने लगी। यह उनके परम् अनुराग का ही फल था कि सीता रूप में माता ने दर्शन दिया, ऐसे साक्षात्कार के विषय में ही गोस्वामी तुलसीदास जी ने कहा है–

''मिलहिं न रघुपति विनु अनुरागा ।
किए जोग तप, ज्ञान विरागा ।।''[11]

अन्य विविध साधनाऍ

अब श्रीरामकृष्ण देव ने अत्यंत व्याकुल होकर कातर भाव से माता से विनती की– ''माता मैं तो पढ़ना लिखना नहीं जानता, तू ही कृपा करके मुझे सभी शास्त्रों, सभी मत–मतान्तरों का सार बतला दे।''[12] जगत्माता की इच्छा हुई और विभिन्न मत–मतान्तरों, सम्प्रदायों और विभिन्न भावों के साधक, आचार्य, दक्षिणेश्वर आने लगे एवं श्रीरामकृष्ण जी को विभिन्न साधनाओं में दीक्षित करने लगे। इस क्रम में श्रीरामकृष्ण जी एक–एक सभी तरह की साधनाओं में सिद्धि लाभ करने लगे। ऐसा करके उन्होंने इस महान सत्य की उपलब्धि प्राप्त की, कि सभी साधन–मार्ग उसी सत्य का अन्वेषण'' करते हैं जो उस अतीन्द्रिय सत्ता की ओर ले जाने वाला है। सभी का लक्ष्य ईश्वर प्राप्ति है । जितने मत उतने पथ, परंतु गन्तव्य केवल एक। उन्होंने जो अनेकों कठोर साधनाएं की हैं केवल आत्म लाभ के लिए ही नहीं, वरन् लोक शिक्षण एवं जगत् कल्याण के लिए की हैं। युग के संशयपूण युक्तिवाद के वातावरण में जब करोड़ों नर–नारियों के मन में भगवान के अस्तित्व के बारे में ही संदेह हो रहा था, उन्होंने स्वयं साधना करके ईश्वर का साक्षात्कार किया और उस परम् सत्य का अस्तित्व प्रमाणित किया । उन्होंन यह सिद्ध किया कि आन्तरिक चाह और व्याकुलता के बल पर ईश्वर को पाना संभव है, उन्होंने भक्तों से कहा था– ''मैं (आदर्श जीवन का) सांचा छोड़े जा रहा हूॅ, तुम लोग उसी में अपना जीवन ढाल लेना।''[13] आगे चलकर इन्हीं निर्देशों का पालन करते हुए उनके शिष्यों ने स्वामी विवेकानन्द आदि ने वैसा ही किया।

गृहस्थ जीवन और भक्तियोग साधना

दक्षिणेश्वर में श्रीरामकृष्ण देव जी दिव्योन्मादी साधनाऍ चलती रही और जब इसकी जानकारी उनकी मॉ और सम्बन्धियों को हुई तब उनको भ्रम हुआ कि गदाधर को मनोरोग हो गया है । अतएव उन्हें कामारपुकुर बुलाया गया । तंत्र–मंत्र और औषधियों से उनका उपचार किया गया, किन्तु कोई फल नहीं मिला । वे सदा मॉ–मॉ कहकर रोते–बिलखते भूतिर खाल, वुधुई मोड़ल नामक

शमशान में जा–जाकर अकेले ही तरह–तरह की साधनाऍं करते रहे। जब जगत्माता के अवाध दर्शन एवं उसकी विविध लीलाऍं देखते–देखते उनका मन बाह्य रूप में शान्त हुआ तब माता चन्द्रमणी एवं भाई श्रीरामेश्वर ने उनके विवाह की गुप्त योजना बनाई और इसकी तैयारी की। श्रीरामकृष्ण जी का स्वतः ही इसका आभाष हो गया और वे बोले– ''इधर–उधर ढूंढना व्यर्थ है, जयरामवाटी के श्रीरामचन्द्र मुखोपाध्याय की कन्या मेरें लिए चिन्हित कर रखी गई है, देखो जाकर''[14] तदनुसार खोज की गई और सारदामणि के साथ उनका विवाह हो गया। वैवाहिक जीवन महापुरूषों का एक लोकाचार होता है। उनका दाम्पत्य जीवन अपूर्णता की पूर्ति के लिए होता है। यह दो दिव्य आत्माओं का सम्मिलन हुआ करता है। ऐहिक–दैहिक सम्बन्ध की वहॉ कोई कल्पना भी नहीं होती। इसी कारण दोनों शक्तियों ने एक–दूसरे की पूजा–आराधना दिव्यभाव से किया था। कुछ दिन सारदा देवी कामारपुकर में रहीं, फिर मायके चली गईं। श्रीरामकृष्ण जी की साधनाऍं अबाध रूप से चलती रहीं, वे फिर दक्षिणेश्वर लौट आए । उनका भाव उन्माद फिर बढ़ गया। वे सदा मॉ–मॉ कहकर रोते भटकते रहते। यह दशा देखकर– काली मंदिर की निर्मात्री रानी रासमणि के दामाद जमींदार मथुर बाबू एवं मंदिर के अन्य सेवक, दर्शनार्थगण चकित रहते। श्रीरामकृष्ण के अलौकिक स्वरूप को देखकर मथुर बाबू आश्चर्य चकित थे। उन्हें भी अद्भुत दर्शन हुआ और भाव विहवल होकर श्रीरामकृष्ण के चरणों में गिर पड़े– बोल पड़े ''बाबा तुम मनुष्य नहीं हो।''[15] इसके बाद मथुर मोहन जी आजीवन नरदेह में अवतीर्ण देवता के रूप में ही उनकी पूजा करते रहे थे।

गृहस्थ जीवन की साधना के क्रम में ही उन्होंने मंझले भाई श्री रामेश्वर के देहांत के पश्चात् अपनी माता चन्द्रमणी देवी को साथ में ही रखने लगे। स्वयं प्रातः उनकी पूजा करते और माता काली के ही रूप में उन्हें देखते। चन्द्रमणी देवी की मृत्यु के समय वे बहुत रोए थे। चूँकि वे सन्यास ग्रहण कर चुके थे, इसलिए उनकी अंत्येष्टि क्रिया गंगा में खड़े होकर अश्रुनीर से तर्पण करते हुए पुत्र धर्म का निर्वाह किया। श्रीरामकृष्ण देव जैसे अवतारी पुरूष के लिए विशेष कर्मकाण्ड क्रिया की आवश्यकता भी नहीं होती। 'श्रीमद्भागवत् में कहा गया है–

''देवर्षि भूताप्त नृणां पितृणां न
किं करो नायंमृणी च राजन् ।
सर्वात्मना य शरणं शरण्यं गतो
मुकुन्दस्य परिहृत्य कामान् ।।''[16]

अर्थात् देव ऋण, पितृ ऋण आदि ऋणों से मुक्त होने की आवश्यकता उन पुरूषों के लिए नहीं रहती जो समस्त जीवों के शरणस्थली भगवान श्री हरि की शरण में (समस्त कामनाओं को त्यागकर) पहुंचे हुए होते हैं। इसी प्रकार चित्रकूट प्रसंग में जब भरत् जी का दल श्रीरामप्रभु को मनाने गया तब भगवान श्रीराम को पता चला कि पिताश्री दशरथ महाराज का देहावसान हो चुका है तब भगवान ने भी ऐसा ही तर्पण कर्म किया था । गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं–

''जासु नाम पावक अधतूला ।
सुमिरत सकल सुमंगल मूला ।
सुद्ध भयेउ साधु सम्मत अस ।
तीरथ आवाहन सुरसरि जस ।।''[17]

निष्कर्ष

श्रीरामकृष्ण परमहंस की भक्ति योग यात्रा का उद्देश्य वास्तविक मानव धर्म की स्थापना रहा है। विभिन्न मतों, सम्प्रदायों और विभिन्न धर्मों की उपासना पद्धतियों के बीच समन्वय स्थापित करते हुए एक आदर्श एवं अभिनव धर्म की व्याख्या उन्होंने की है। वे स्वतः सिद्ध पुरूष थे, उन्हें यह सब करने की आवश्यकता स्वयं के लिए नहीं, संसार के लिए थी। उन्होंने लुप्त हो रही शुद्ध शास्त्र मर्यादा की रक्षा के लिए शास्त्र निर्देशित साधनाऍं की। इसलिए हम देखते हैं, कि प्रत्येक भाव की साधना में अग्रसर होते समय व शास्त्र निर्दिष्ट वेश–भूषा, वस्त्र और चिन्ह धारण किया करते थे। तंत्र साधना के समय लाल वस्त्र, सिंदूर और रूद्राक्ष धारण किया।

वैष्णव तंत्र साधना में श्वेत वस्त्र, श्वेत चंदन और तुलसी की माला आदि धारण किया। वात्सल्य भाव की साधना के समय बालक रूप श्रीराम की मॉ कौशल्या का नारी–भाव, मातृभाव का अपने में आरोपण किया। मधुर भाव की साधना में उन्होंने नारी वेश के लिए साड़ी, घाघरा, ओढ़नी, चोली धारण कर स्वयं को राधाभाव में लीन कर कृष्णमय हुए। वैष्णव शास्त्रों के मधुर भाव को पॉचों भावों का सार कहा और भक्ति की पराकाष्ठा कहा गया है। दास्य भाव की साधना में हनुमान रूप होकर उन्होंने माता सीता का दर्शन और प्रभु श्रीराम की उपासना की। अद्वैत साधना में उन्होंने शिक्षा सूत्र त्याग कर सन्यास के अंग स्वरूप दण्ड–कमण्डल तथा काषाय वस्त्र धारण किया। इन तमाम प्रसंगों में उन्होंने दीर्घकाल से निर्धारित किन्तु विस्मृत हो रहे शास्त्र को यथार्थ मर्यादा प्रदान की और विश्वासियों के समक्ष अपना आदर्श प्रमाण प्रस्तुत किया।

ईश्वर में श्रद्धा और विश्वास, प्रेम में भक्ति का आविर्भाव होता है। इस कारण शास्त्र विहित वैधी भक्ति की आवश्यकता प्रमाणित है। इन सब प्रयत्नों का उद्देश्य केवल भगवत् भक्ति ही है,

''जहं लगी साधन वेद वरवानी ।
सबु कर फल हरि भगति भवानी ।।''[18]

अतः वैधी भक्ति कर्म है तो पराभक्ति उसका फल कहा गया है। श्रीरामकृष्ण देव ने अपनी साधना में यह सिद्ध कर दिया है।

संदर्भ–ग्रंथ सूची

1. *श्रीमद्भागवत् 1/1/4*
2. *भारतीय संस्कृति के विकास, पृ.क्रं.8*
3. *श्री रामचरित मानस बालकाण्ड 7*
4. *श्री रामचरित मानस उत्तरकाण्ड*
5. *श्री रामकृष्ण संक्षिप्त जीवनी तथा उपदेश, पृ.क्रं.14*
6. *श्री रामचरित मानस आरण्यकाण्ड*
7. *श्री रामकृष्ण संक्षिप्त जीवनी तथा उपदेश पृ.क्रं.16*
8. *श्री रामचरित मानस आराण्यकाण्ड*
9. *श्री रामकृष्ण संक्षिप्त जीवनी तथा उपदेश पृ.क्रं.17*
10. *तुलसीदास गीतावली*

11. *श्री रामचरितमानस उत्तरकाण्ड*
12. *श्री रामकृष्ण संक्षिप्त जीवनी तथा उपदेश पृ.क्रं.22*
13. *भगवान श्री रामकृष्ण धर्म तथासंघ, पृ.क्रं.76*
14. *श्री रामकृष्ण संक्षिप्त जीवनी तथा उपदेश पृ.क्रं.19*
15. *श्री रामकृष्ण संक्षिप्त जीवनी तथा उपदेश पृ.क्रं.46*
16. *श्रीमतद्भावगत् 11/5/41*
17. *श्री रामचरित मानस अयोध्याकाण्ड*
18. *श्री रामचरित मानस उत्तरकाण्ड*